श्रीपरमात्मने नमः

# धर्म क्या है?

—•••—

प्र०—कृपापूर्वक आप धर्मकी व्याख्या करें ।

उ०—धर्मकी सच्ची व्याख्या कर सकें ऐसे पुरुष इस जमानेमें मिलने कठिन हैं ।

प्र०—आप जैसा समझते हैं वैसा ही कहनेकी कृपा करें ।

उ०—धर्मका विषय बड़ा गहन है, मुझको धर्मग्रन्थोंका बहुत कम ज्ञान है, वेदका तो मैंने प्रायः अध्ययन ही नहीं किया । मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, ऐसी अवस्थामें धर्मका तत्त्व कहना एक बालकपन-सा है । इसके अतिरिक्त मैं जितना कुछ जानता हूँ उतना भी कह नहीं सकता, क्योंकि जितना जानता हूँ उतना स्वयं कार्यमें परिणत नहीं कर सकता ।

प्र०—खैर, यह बतलाइये कि आप किसको धर्म मानते हैं ?

उ०—जो धारण करनेयोग्य है ।

प्र०—धारण करनेयोग्य क्या है ?

उ०—इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाली महापुरुषोंद्वारा दी हुई शिक्षा ।

प्र०—महापुरुष कौन हैं ?

उ०—परमात्माके तत्त्वको यथार्थरूपसे जाननेवाले तत्त्ववेत्ता पुरुष ।

प्र०—उनके लक्षण क्या हैं ?

उ०—अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

(गीता १२ । १३-१४)

'जो सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित एवं अहंकारसे रहित सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है ।'

'जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ निरन्तर लाभ-हानिमें

सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वश-में किये हुए मेरेमें दृढ़ निश्चयवाला है वह मेरेमें अर्पण किये हुए मन, बुद्धिवाला मेरा भक्त मेरेको प्रिय है ।'

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥
( गीता १४ । २४-२५ )

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ दुःख-सुख-को समान समझनेवाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है ।'

'और जो मान और अपमानमें सम है एवं मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है ।' ये महापुरुषोंके लक्षण हैं ।

प्र०—इन लक्षणोंवाले कोई महापुरुष हिन्दू-जातिमें आपकी जानकारीमें इस समय हैं ?

उ०—अवश्य हैं, परन्तु मैं कह नहीं सकता ?

प्र०—आप हिन्दू किसको समझते हैं ?

उ०—जो अपनेको हिन्दू मानता हो, वही हिन्दू है।

प्र०—'हिन्दू' शब्दका क्या अभिप्राय है ?

उ०—हिन्दुस्तान ( आर्यावर्त ) में जन्म होना और किसी हिन्दुस्तानी आचार्यके चलाये हुए मतको मानना।

प्र०—सनातनी, आर्य, सिख, जैन, बौद्ध और ब्राह्म आदि भिन्न-भिन्न मतको माननेवाली तथा भारतकी जंगली जातियाँ क्या सभी हिन्दू हैं ?

उ०—यदि वे अपनेको हिन्दू मानती हों तो अवश्य हिन्दू हैं।

प्र०—क्या सभी हिन्दुओंद्वारा चलाये हुए मत हिन्दू-धर्म माने जा सकते हैं ?

उ०—अवश्य।

प्र०—आप इन सब मतोंमें सबसे प्रधान और श्रेयस्कर किस मतको मानते हैं ?

उ०—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरभक्ति,

ज्ञान, वैराग्य, मनका निग्रह, इन्द्रियदमन, तितिक्षा, श्रद्धा, क्षमा, वीरता, दया, तेज, सरलता, स्वार्थत्याग, अमानित्व, दम्भहीनता, अपैशुनता, निष्कपटता, विनय, धृति, सेवा, सत्संग, जप, ध्यान, निर्वैरता, निर्भयता, समता, निरहंकारता, मैत्री, दान, कर्तव्य-परायणता और शान्ति—इन चालीस गुणोंमेंसे जिस मतमें जितने अधिक गुण हों वही मत सबसे प्रधान और श्रेयस्कर माना जानेयोग्य है ।

प्र०—इन चालीसोंकी संक्षेपमें व्याख्या कर दें तो बड़ी कृपा हो ?

उ०—अच्छी बात है, सुनिये ।

( १ ) अहिंसा—मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना ।

( २ ) सत्य—अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा जैसा निश्चय किया गया हो वैसा-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना ।

( ३ ) अस्तेय—किसी प्रकार भी चोरी न करना ।

( ४ ) ब्रह्मचर्य—आठ प्रकारके मैथुनोंका त्याग करना ।
( ५ ) अपरिग्रह—ममत्वबुद्धिसे संग्रह न करना ।
( ६ ) शौच—बाहर और भीतरकी पवित्रता ।
( ७ ) सन्तोष—तृष्णाका सर्वथा अभाव ।
( ८ ) तप—स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट-सहन ।
( ९ ) स्वाध्याय—पारमार्थिक ग्रन्थोंका अध्ययन और भगवान्‌के नाम तथा गुणोंका कीर्तन ।
( १० ) ईश्वरभक्ति—भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेम होना ।
( ११ ) ज्ञान—सत् और असत् पदार्थका यथार्थ जानना ।
( १२ ) वैराग्य—इस लोक और परलोकके समस्त पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव ।
( १३ ) मनका निग्रह—मनका वशमें होना ।
( १४ ) इन्द्रियदमन—समस्त इन्द्रियोंका वशमें होना ।
( १५ ) तितिक्षा—शीत, उष्ण और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सहनशीलता ।
( १६ ) श्रद्धा—वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षकी तरह विश्वास ।
( १७ ) क्षमा—अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना ।

( १८ ) वीरता—कायरताका सर्वथा अभाव ।

( १९ ) दया—किसी भी प्राणीको दुखी देखकर हृदयका पिघल जाना ।

( २० ) तेज—श्रेष्ठ पुरुषोंकी वह शक्ति, कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त नीचप्रकृति मनुष्य भी प्रायः पापाचरणसे हटकर श्रेष्ठ कर्मोंमें लग जाते हैं ।

( २१ ) सरलता—शरीर और इन्द्रियोंसहित अन्तः-करणकी सरलता ।

( २२ ) स्वार्थत्याग—किसी कार्यसे इस लोक या परलोक-के किसी भी स्वार्थको न चाहना ।

( २३ ) अमानित्व—सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना ।

( २४ ) दम्भहीनता—धर्मध्वजीपन अर्थात् ढोंगका न होना ।

( २५ ) अपैशुनता—किसीकी भी निन्दा या चुगली न करना ।

( २६ ) निष्कपटता—अपने स्वार्थसाधनके लिये किसी बातका भी छिपाव न करना ।

( २७ ) विनय—नम्रताका भाव।

( २८ ) धृति—भारी विपत्ति आनेपर भी चलायमान न होना।

( २९ ) सेवा—( सब भूतोंके हितमें रत रहना ) समस्त जीवोंको यथायोग्य सुख पहुँचानेके लिये मन, वाणी, शरीरद्वारा निरन्तर निःस्वार्थभावसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना।

( ३० ) सत्संग—संत-महात्मा पुरुषोंका संग करना।

( ३१ ) जप—अपने इष्टदेवके नाम या मन्त्रका जप करना।

( ३२ ) ध्यान—अपने इष्टदेवका चिन्तन करना।

( ३३ ) निर्वैरता—अपने साथ वैर रखनेवालोंमें भी द्वेषभाव न होना।

( ३४ ) निर्भयता—भयका सर्वथा अभाव।

( ३५ ) समता—मस्तक, पैर आदि अपने अङ्गोंकी तरह सबके साथ वर्णाश्रमके अनुसार यथायोग्य बर्तावमें भेद रखनेपर भी आत्मरूपसे सबको समभावसे देखना।

( ३६ ) निरहंकारता—मन, बुद्धि, शरीरादिमें 'मैं'

पनका और उनसे होनेवाले कर्मोंमें कर्तापनका सर्वथा अभाव ।

( ३७ ) मैत्री—प्राणिमात्रके साथ प्रेमभाव ।

( ३८ ) दान—जिस देशमें जिस कालमें जिसको जिस वस्तुका अभाव हो उसको वह वस्तु प्रत्युपकार और फलकी इच्छा न रख-कर हर्ष और सत्कारके साथ प्रदान करना ।

( ३९ ) कर्तव्यपरायणता—अपने कर्तव्यमें तत्पर रहना ।

( ४० ) शान्ति—इच्छा और वासनाओंका अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें निरन्तर प्रसन्नताका रहना ।

प्र०—आप वर्णाश्रम-धर्मको मानते हैं या नहीं ?

उ०—मानता हूँ और उसका पालना अच्छा समझता हूँ ।

प्र०—जो वर्णाश्रम-धर्मका पालन नहीं करते उनको क्या आप हिन्दू नहीं मानते ?

उ०—जब वे अपनेको हिन्दू मानते हैं तब उन्हें हिन्दू न माननेका मेरा क्या अधिकार है ? परन्तु वर्णाश्रम-धर्म न माननेवालोंकी शास्त्रोंमें निन्दा की गयी है । अतएव वर्णाश्रम-धर्मको अवश्य मानना चाहिये ।

प्र०—आप वर्ण जन्मसे मानते हैं या कर्मसे ?

उ०—जन्म और कर्म दोनोंसे।

प्र०—इन दोनोंमें आप प्रधान किसको मानते हैं ?

उ०—अपने-अपने स्थानमें दोनों ही प्रधान हैं।

प्र०—वर्ण कितने हैं ?

उ०—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं।

प्र०—ब्राह्मणके क्या कर्म हैं ?

उ०—शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

( गीता १८। ४२ )

'अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, बाहर-भीतरकी शुद्धि, धर्मके लिये कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रियों और शरीरकी सरलता, आस्तिकबुद्धि, शास्त्रविषयक ज्ञान और परमात्मतत्त्वका अनुभव भी—ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं यानी धर्म हैं।'

इनके अतिरिक्त यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना—ये कर्तव्य कर्म हैं। इनमें यज्ञ करना, दान

देना और विद्या पढ़ना—ये तीन तो सामान्य धर्म हैं और यज्ञ कराना, दान लेना और विद्या पढ़ाना ये जीविकाके विशेष धर्म हैं।

प्र०—ब्राह्मणकी जीविकाके सर्वोत्तम धर्म क्या हैं?

उ०—किसानके अनाज घर ले जानेके बाद खेतमें और अनाजके क्रय-विक्रयके स्थानमें जमीनपर बिखरे हुए दानोंको बटोरकर उनसे शरीर-निर्वाह करना सर्वोत्तम है। इसीको ऋत और सत् कहा है। परन्तु यह प्रणाली नष्ट हो जानेके कारण इस जमानेमें इस प्रकार निर्वाह होना असम्भव सा है। अतएव साधारण जीविका-के अनुसार ही निर्वाह करना चाहिये।

प्र०—साधारण जीविकामें कौन उत्तम है?

उ०—बिना याचना किये जो अपने आपसे प्राप्त होता है वह पदार्थ सबसे उत्तम है, उसीको अमृत कहते हैं। नियत वेतनपर विद्या पढ़ाना और माँगकर दक्षिणा या दान लेना निन्द्य है। इनमें माँगकर दान लेनेको तो विषके सदृश कहा है।

प्र०—इस वृत्तिसे निर्वाह न हो तो ब्राह्मणको क्या करना चाहिये?

उ०—क्षत्रियकी वृत्तिसे निर्वाह करे; उससे भी काम न चले तो वैश्य-वृत्तिसे जीविका चलावे। परन्तु दासवृत्तिका अवलम्बन आपत्तिकालमें भी न करे।

प्र०—क्षत्रियके क्या कर्म हैं?

उ०—**शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥**

( गीता १८। ४३)

'शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागनेका स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव—ये सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।'

**प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।**
**विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥**

( मनुस्मृति १। ८९ )

'प्रजाकी रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयोंमें न लगना—संक्षेपसे ये क्षत्रियके कर्म हैं।' इन्हींमेंसे प्रजाका पालन करना, सैनिक बनना, न्याय करना, कर लेना और शस्त्रोंद्वारा दूसरोंकी रक्षा करना इत्यादि जीविकाके कर्म हैं। दान देना, यज्ञ करना और विद्या पढ़ना—ये सामान्य धर्म हैं।

प्र०—इन कर्मोंसे क्षत्रियकी जीविका न चले तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—वैश्य-वृत्तिसे निर्वाह करे, उससे भी न चले तो शूद्र-वृत्तिसे काम चलावे।

प्र०—वैश्यके क्या कर्म हैं ?

उ०—पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥
( मनुस्मृति १ । ९० )

'पशुओंकी रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार, व्याज और खेती—ये वैश्यके कर्म हैं।'

पशुपालन, कृषि तथा सत् और पवित्र व्यापार—ये स्वाभाविक और जीविकाके भी कर्म हैं। व्याज भी जीविकाका है, परन्तु केवल व्याज उपजाना निन्द्य है। यज्ञ, दान और अध्ययन सामान्य धर्म हैं।

प्र०—सत् और पवित्र व्यापार किसे कहते हैं, बताइये ?

उ०—दूसरेके हकपर नीयत न रखते हुए झूठ-कपटको छोड़कर न्यायपूर्वक पवित्र वस्तुओंका क्रय-

विक्रय करना सत् और पवित्र व्यापार* है।

प्र०—इनसे जीविका न चले तो वैश्यको क्या करना चाहिये ?

उ०—शूद्र-वृत्तिसे काम चलावे, परन्तु अपवित्र वस्तुओंका और सट्टेका व्यापार कभी न करना चाहिये।

प्र०—कृपाकर अपवित्र वस्तुओंकी व्याख्या कीजिये।

उ०—मद्य, मांस, हड्डी, चमड़ा, सींग, लाह, चपड़ा, नील इत्यादि शास्त्रवर्जित घृणित पदार्थ अपवित्र हैं।

प्र०—शूद्रके क्या कर्म हैं ?

उ०—सेवा और कारीगरीके काम ही इनके स्वाभाविक और आजीविकाके कर्म हैं।

---

* वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल, नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी ( खराब ) वस्तु मिलाकर दे देना अथवा ( अच्छी ) ले लेना तथा नफा, आढ़त और दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे दूसरेके हिकको ग्रहण कर लेना इत्यादि दोषोंसे रहित जो सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है उसका नाम सत्य-व्यवहार है।

श्रीहरिः

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित–

## तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ ( सचित्र )

प्रस्तुत पुस्तकमें 'कल्याण' में प्रकाशित निबन्धोंका संग्रह है। पृष्ठ ३५०, मूल्य ||=) स० ··· |||-)

### तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ ( सचित्र )

( छोटे आकारका गुटका संस्करण )

साइज २२×२९, ३२ पेजी, पृष्ठ ४८८, |-), |=)

## तत्त्व-चिन्तामणि भाग २ ( सचित्र )

इसमें 'कल्याण' के ४८ निबन्धोंका संग्रह है, पृष्ठ ६३२, मूल्य |||=), सजिल्द १=)

### तत्त्व-चिन्तामणि भाग २

( छोटे आकारका गुटका संस्करण )

साइज २२×२९, ३२ पेजी, पृष्ठ ७५०, मू० |=), ||)

## तत्त्व-चिन्तामणि भाग ३ ( सचित्र )

प्रथम और द्वितीय भागोंको देखनेसे इसकी उपयोगिता समझ जायँगे। पृष्ठ ४५०, मू० ||≈), |||=)

### तत्त्व-चिन्तामणि भाग ३

( छोटे आकारका गुटका संस्करण )

साइज २२×२९, ३२ पेजी, पृष्ठ ५६०, मू० |-), |=)

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर

# चित्र

## छोटे, बड़े, रंगीन और सादे धार्मिक चित्र

### श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीविष्णु और श्रीशिवके दिव्य दर्शन

जिसको देखकर हमें भगवान् याद आवें, वह वस्तु हमारे लिये संग्रहणीय है। भक्तों और भगवान्‌के स्वरूप एवं उनकी मधुर मोहिनी लीलाओंके सुन्दर दृश्य-चित्र हमारे सामने रहें तो उन्हें देखकर थोड़ी देरके लिये हमारा मन भगवत्स्मरणमें लग जाता है।

ये सुन्दर चित्र किसी अंशमें इस उद्देश्यको पूर्ण कर सकते हैं। इनका संग्रहकर प्रेमसे जहाँ आपकी दृष्टि नित्य पड़ती हो, वहाँ घरमें, बैठकमें और मन्दिरोंमें लगाइये एवं चित्रोंके बहाने भगवान्‌को यादकर अपने मन-प्राणको प्रफुल्लित कीजिये।

हमारे यहाँ १५×२०, १०×१५, ७॥×१० और ५×७॥ के बड़े और छोटे चित्र सस्ते-सस्ते दामोंमें मिलते हैं।